भ्रमर–गीत का दार्शनिक एवं सामाजिक पक्ष

डॉ. विद्यासागर उपाध्याय

भ्रमर–गीत एक प्रतीकात्मक कथा है। सूर–सागर की सभी खण्ड कथाओं में कवित्व भक्तिभाव एवं कवि की व्यक्तिगत तल्लीनता की दृष्टि से इसका स्थान सर्वोपरि है। भ्रमर–गीत में जहाँ सूरदास निर्गुण–सगुण का प्रश्न छेड़ते हैं, वहाँ भी उनकी शैली नीरस नहीं हुई है बल्कि वचन–वक्रता के कारण उनका 'भ्रमर–गीत' उपालम्भ काव्य का आदर्श बन गया है। ऐसा सुंदर उपालम्भ काव्य और कहीं नहीं मिलता।[1]

सूरदास के 'भ्रमर–गीत' के दो पक्ष हैं–;पद्ध दार्शनिक पक्ष, और ;पपद्ध साहित्यिक पक्ष। दार्शनिक दृष्टि से इसके प्रत्येक पात्र, स्थान और घटनाएँ एक–एक आध्यात्मिक तथ्य के प्रतीक हैं। कृष्ण ब्रह्म हैं गोपियाँ जीवात्माएँ हैं, गोपियों की विरह–वेदना, ब्रह्म के लिए है। आत्मा की पुकार है और उद्धव उस ज्ञानाभिमान के प्रतीक हैं जिससे पीछा छुड़ाकर हीं ईश्वर को पाया जा सकता है। भ्रमर–गीत के साहित्यिक पक्ष में भाव–व्यंजना, रस–परिपाक एवं अलंकार–चमत्कार का अनूठा सामंजस्य है।

सूर के तीन भ्रमर–गीत हैं। पहला भ्रमर–गीत भागवत की कथा का आधार लेकर रचा गया है, किन्तु अन्य दो भ्रमर–गीत सूर की मौलिकता को सामने लाते हैं। भ्रमर–गीत रचना का उद्देश्य कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज भेजने के उद्देश्य से जुड़ा है। कृष्ण उद्धव को ब्रज भेजते समय कहते हैं– **'सुख संदेश सुनाय, हमारो गोपिन को दुःख मेटियो।'** इसी बहाने कृष्ण यह भी चाहते हैं कि, उद्धव के योग–नीरस हृदय को प्रेम–भक्ति से सींचा जाय। तीसरा उद्देश्य ब्रजवासियों की दशा जानने की उनकी इच्छा भी है। यह कहना स्थिति का सरलीकरण है कि 'भ्रमर–गीत' निर्गुण पर सगुण की विजय दिखलाने के लिये रचा गया है। दार्शनिक प्रतिपादन को लक्ष्य बनाकर या कथ्य को तर्क–जाल में उलझाकर कोई भी महान रचना नहीं रची जा सकती। सूर जैसे संवेदनशील कवि से यह चूक तो हो ही नहीं सकती थी कि वे एक मार्मिक प्रसंग को बौद्धिक जुगाली करते हुये गँवा बैठते। सूर की गोपियाँ जब निर्गुण का खण्डन करती हैं तब उनके तर्क में नन्ददास के गोपियों के तर्क की तीक्ष्णता नहीं दिखती। सूर की गोपियों के पास भोले–भाले भावुक तर्क हैं, इसलिये वातावरण दार्शनिक, वैचारिक न होकर भावात्मक बना रहता है। अतः प्रेम की अनुभूतियों को विरह–व्यथा के द्वारा उजागर करना ही कवि का मुख्य प्रयोजन है।

गोपियों के प्रेम के आगे उद्धव योग की तलवार समर्पित कर देते हैं– यह तो उसका उपजात है। मर्मस्पर्शी क्षणों की सही पहचान हीं भ्रमर–गीत के प्रभावान्विति का कारण है। इसी प्रकार भ्रमर–गीत पुष्टिमार्ग का घोषणापत्र कहलाने से भी बच गया है। निर्गुण और सगुण का विवाद कवि के लिए बस इतना ही महत्व रखता है कि निर्गुण कठिन मार्ग है और सगुण अपेक्षाकृत सरल है–

''सब विधि अगम विचारहिं तातैं
सूर सगुण लीलापद गावैं।''

' भ्रमर–गीत' में 'भ्रमर' सम्बोधन उद्धव एवं कृष्ण के लिए लक्षणार्थ है। किन्तु जब वे भौंरे के बहाने कृष्ण को निशाना बनाती है तब व्यंग्यार्थ है। यहाँ उद्धव एक संवाद बोलते हैं कि जवाब में गोपियाँ भावातिरेक–वश अनेक संवाद बोल जाती हैं। उनका प्रेम–प्रवाह जैसे विराम ही नहीं लेता। सूरदास ने उनके प्रेम–दशा की गम्भीर छानबीन की है एवं

सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों का बारीक अंकन किया है, किन्तु कथा नहीं आगे बढ़ती बल्कि घूर्णावर्त होती हुई गहरे धँसती चली जाती है।

उपनिषद–काल से ही भारतीय–दर्शन में ज्ञान और भक्ति का संघर्ष देखने को मिलता है। भक्ति–काल में यह संघर्ष और भी तेज हो गया था। एक ओर कबीर जैसा अक्खड़ संत था, तो दूसरी ओर सूर एवं तुलसी जैसे भक्त। एक से दूसरे को बड़ा बताने की होड़ लगी थी। बल्लभाचार्य ने 'अणुभाष्य' में कहा 'यदि ज्ञान सरसों है तो भक्ति सुमेरू पर्वत।' धार्मिक संघर्ष की इसी भित्ति पर सूर के भ्रमर–गीत का दार्शनिक महत्व है। उसमें गोपियाँ अपने प्रेम को श्रेष्ठ बताने के लिए ज्ञान, योग एवं ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की छीछालेदर करती हैं।

उद्धव गोपियों के लिए कृष्ण का संदेश लाए हैं– 'निर्गुण का ध्यान धरने एवं समाधि लगाने का संदेश।' गोपियाँ उनसे व्याख्या की अपेक्षा नहीं करतीं बल्कि बिलखने लगती हैं। वे निर्गुण के प्रति उत्तर रूदन एवं उद्धव के प्रति अपना गुस्सा जाहिर कर के देती हैं। वे कहती है कि– घर बार छोड़ने, अंग में भस्म लगाने, एवं सिर पर जटा धारण करने की सीख देकर दुःख देने का जैसे उद्धव ने ठेका ले रखा है। इनका शरीर दुःख पायी हुई युवतियों का शाप से काला पड़ गया है फिर भी उन्हें डर नहीं होता। यथा– 'ता सराय तैं भयो स्याम तन तउ न गहत डर जी कौ।'

तर्क का जवाब भावुकता से है। गोपियाँ निराकार को अस्वीकार करती हुई जो तर्क देती है, वे भी भावना से ओत–प्रोत है। व्यंग–कटाक्ष एवं निर्गुण के निषेध द्वारा भी वे अपनी प्रेम व्यथा का ही इजहार करती हैं। वे उद्धव से सन्तुष्ट नहीं होतीं। यदि कृष्ण निराकार है तो लीलाएँ किसने की ? वे पूछती हैं–'निर्गुण किस देश का रहने वाला है? उनके माता–पिता एवं पत्नी के क्या नाम हैं?

''निरगुन कौन देश को बासी?
मधुकर हँसि समुझाय, सौंह दे बूझत साँच, न हाँसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी
कैसो बरन भेस है कैसो, केहि रस में अभिलाषी।।''

गोपियों के विचार से निर्गुण ब्रह्म का कोई आधाार नहीं है, न ही इसका कोई निश्चित स्वरूप है। उसकी आकांक्षाएँ एवं निर्देश भी अनिश्चित हैं। इस तरह सब प्रकार से अज्ञात सत्ता की अराधना कैसे हो सकती है? गोपियाँ उद्धव से कहती है चारो ओर भ्रमित इस सगुण सत्ता का निषेध करके क्यों व्यर्थ उसके अव्यक्त और अनिर्दिष्ट पक्ष को लेकर बकबक कर रहे हो।[2]

दार्शनिक निष्पतियाँ कवि का मुख्य प्रयोजन नहीं हैं। इसलिए गोपियाँ ज्ञान को बोझ बताकर आगे निकल जाती हैं। उनकी दृष्टि में निराकार तो मन का लड्डू है, उससे भूख नहीं मिट सकती। यदि भक्ति असली दूध है तो ज्ञान खारे कुएं का पानी। यदि भक्ति सोना है तो ज्ञान भुस्सी है–

''जाकौ मोक्ष विचारत बरनत, निगम कहत हैं नेति।
सूर स्याम तनि को भुस फस्कै, मधुप तुम्हारे हेति।।''

ज्ञान चंचल है, भक्ति स्थिर। भक्ति मन का विषय है, ज्ञान तर्क का। मन जिससे लग जाता है, तर्क उसे हटा नहीं सकता। इसलिए गोपियाँ उद्धव के तर्क के सामने अपना हृदय रख देती हैं–

मन में रह्यौ नाहिं न ठौर।
नंद–नंदन अक्षत कैसे आनियै उर और।।''

यहाँ ज्ञान और योग का जादू नहीं चल सकता। वे कहती है कि तुम्हारा निराकार ब्रह्म भी हमें स्वीकार्य है, यदि इसके माध्यम से कृष्ण हमें मिल जायँ। गोपियाँ तो कृष्ण रूपी डोर के साथ घूमने वाली लट्टू हैं। वे भला योग क्यों सीखें?

''उधों हमहिं न जोग सिखैये

जिहिं उपदेस मिलैं हरि हमको, सो ब्रत नेम बतैये।''

उद्धव ने प्रेम की स्मृतियों को उद्दीप्त कर दिया है। अच्छा ही हुआ कि उद्धव आ गये। नहीं आते तो उनके प्रेम की परीक्षा कैसे होती ?

''उधौ भली भई ब्रज आए

विधि कुलाल कीन्हें काँचे घट, ते तुम आनि पकाए।''

ब्रज करि अंग जोग ईंधन करि, सुरति आनि सुलगाए।''

यहाँ सूर ने साँगरुपक के माध्यम से प्रेम की थाती को चित्रात्मक बना दिया है। प्रेम के बल और विश्वास पर ही गोपियाँ कहती है– ''जोग ठगौरी ब्रज न विकैहें।''

'भ्रमर–गीत' में 'स्याम मुख देखे ही परतीत' कहने वाली गोपियों के समक्ष उद्धव का ज्ञान गर्व धूल चाटने लगता है। विरह के कारण उनकी आँखो से जो अश्रु–पनाले बहते हैं उसमें उद्धव का ज्ञान–योग तिनके की तरह बह गया है। उद्धव गोपियों की प्रेमा–भक्ति से निष्णात होकर सहज हो जाते हैं। मथुरा लौटकर वे कहते हैं– ''अब अति पंगु भयो मन मेरो

गयो तहाँ निर्गुण कहने को, भयो सगुण के चेरो।''

उद्धव निर्गुण की आकाशवृत्ति छोड़कर 'सगुण के चेरे हो गये। उनका यह रूपान्तरण प्रज्ञा और तर्क के सहारे नहीं बल्कि प्रेमपरक तल्लीनता एवं अश्रुपूरित भक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है। कृष्ण से उद्धव का एक बिम्बात्मक कथन है– 'अश्रु–सलिल–प्रवाह डर पर अरध नयनन देत।'

'भ्रमर–गीत' में गोपियों की भावना का केन्द्रीय–बिन्दु उनकी प्रेमा–भक्ति है, निराकार का खण्डन उनका लक्ष्य नहीं है। इसलिए पुष्टिमार्ग का दार्शनिक पक्ष क्रमानुसार (वाद–प्रतिवाद पद्धति) से प्रस्तुत नहीं किया गया है यहाँ दर्शन भाव भूमि का अंग बनकर आया है। मुख्य जोर तो अनुभूति पर है।

' भ्रमर–गीत' का साहित्यिक पक्ष अनूठा है। गोपियों की पीड़ा यहाँ क्षोभ, पश्चाताप, वेदना, आशा आदि कई स्थितियों में अभिव्यक्त होती हैं। 'भाव' की दृष्टि से ' भ्रमर–गीत' का विषय 'प्रेम' है। 'रस' की दृष्टि से यह 'विरह–श्रृंगार' के अंतर्गत आता है। सूर के विरह–वर्णन में जहाँ तक मानव सुलभ सौंदर्य और प्रेम की भावना का प्रश्न है, वह अद्वितीय है। सूर इस लिहाज से प्रेम के श्रेष्ठ गायक हैं। भ्रमर–गीत की गोपियाँ सहज हैं। उद्धव से कृष्ण का पत्र पाकर उनमें से कोई उसे पढ़ने की चेष्टा नहीं करती है, कोई नेत्रों से और कोई हृदय से लगा लेती है। पर उसे वे बाँच (पढ़) नहीं पाती। इस पत्र से क्या लेना–देना? क्या पाती कृष्ण का स्थापन्न बन सकती हैं? गोपियाँ कहती हैं–

''कोउ ब्रज बांचत नाहिंन पाती

कत लिखि–लिखि पठवत नंद–नंदन कठिन विरह की कांती।''

वे अपना सीधा–सच्चा प्रेम देकर उद्धव से योग भी लेना नहीं चाहतीं। दूसरी बात मन तो दस बीस हैं नहीं कि दस बीस से नेह जोड़ा जाय–

''उधो मन न भये दस बीस

एक हुतो सो गयौ श्याम संग को अवराधै ईस।।''

उनकी प्यासी आँखे न तो ज्ञान से प्यास बुझा पाती है और न उद्धव के दर्शन से चैन। उनकी स्थिति तो यह है कि 'इक–टक मग जोहति......रोवती, भूलेहूँ पलक न लागी।' कृष्ण की याद में उनकी दशा पावस के मेघ की तरह हो गई है–

> ''इहिं विधि पावस सदा हमारै
> बादर स्यामा रात नैननि में बरसि आँसू जल ढारै।''

यहाँ नेत्रों के व्यापार पर सूर ने सबसे अधिक पद लिखे हैं। शायद इसलिए कि गोपियों के लिए कृष्ण का दर्शन ही एक मात्र सुख है, उनके अभाव में नेत्रों की दुर्दशा है।

सूर के वियोग–वर्णन की पूर्णता की चर्चा करते हुये आचार्य शुक्ल ने कहा है– ''वियोग की जितनी अंतर्दशाएँ हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है वे सब उनके भीतर मौजूद हैं।[3]'' रीति–आचार्यों ने विरह की ग्यारह अवस्थाओं का उल्लेख किया है– अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण–कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा और मरण।[4] सूर के पदों में इन सभी अवस्थाओं का वर्णन हुआ है। प्रेमजन्य–चिंता का एक उदाहरण–

> ''उर में माखन चोर गड़े
> अब कैसेहु निकसत नहिं, उधौ तिरछे ह्वै जु अड़े।''

कृष्ण तिरछे होकर गोपियों के सरल सीधे हृदय में धँस गए हैं, इसी से निकल नहीं पाते। यह कथन सरलीकृत रूप है, भाव–सौन्दर्य का उत्कर्ष तो इससे भिन्न है। इसमें कृष्ण के त्रिभंगी रूप का संकेत है जिसमें अगाध सौन्दर्य है, अथाह आकर्षण है। जो उस रूप पर मुग्ध है, उसके लिए उस छवि को हृदय से निकाल पाना असम्भव है। भाव–व्यंजना और रूप–चित्रण का यही औदात्य 'भ्रमर–गीत' को अमर बनाता है।

संगीत की तमाम राग–रागिनियाँ सूर में ढूँढी जा सकती हैं। सूर की काव्य–भाषा में अलंकारों का प्रयोग काव्य–चमत्कार को बढ़ा देता है। इस प्रेम प्रसंग में राधा की त्रासदी की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह चंचल प्रगलम्भ बालिका भ्रमर गीत–प्रसंग में कुछ शब्द कहकर मौन होती है तो वह मौन कभी टूटता नहीं है।[6] उद्धव ने राधा के हाथ में कृष्ण की एक चिट्ठी दी। इस चिट्ठी पर राधा की प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है–

> ''निरखत अंक श्याम–सुन्दर के बार–बार लावति छाती।
> लोचन जल कागद मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम, स्याम की पाती।''

यहाँ अंक के दो अर्थ हैं– अक्षर और गोद। श्याम के भी दो अर्थ हैं–काला और कृष्ण। इस कारण श्लेष है। यहाँ कवि श्लेष–चमत्कार के चरिए अर्थ–गर्भ परिस्थिति रच देता है।

सूर के पास अलंकारो का एक वैभवयुक्त संसार है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार यहाँ सजीव हो उठे हैं। परम्परा–प्रसिद्ध उपमानों को भी तराश कर वे मन चाहा अर्थ निकाल लेते हैं।

> ''उपमा एक न नैन गही।
> कवि जन–कहत चलि आए, सुधि करि–करि काहू न कही।''

इसीलिए आचार्य शुक्ल ने 'भ्रमरगीत' को सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्धपूर्ण अंश माना है।[5]

स्पष्ट है कि सूरदास का भ्रमरगीत वियोग श्रृंगार का सर्वोच्च शिखर है। सम्पूर्ण भ्रमरगीत वक्रोक्तियों से भरा पड़ा है। उद्धव का संदेश जले पर नमक छिड़कने का कार्य करता है। इसका संदेश भागवत में भी है, परन्तु सूरदास ने इसके बहाने वक्रोक्तियों की भरमार कर दिया है।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2054, पृ.सं. 94
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं. 2054, पृ.सं. 94
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, त्रिवेणी, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सं. 2055, पृ.सं. 64
4. भारतीय काव्यशास्त्र, प्रो0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.सं.167
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं0 2054, पृ.सं. 94
6. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, 2009, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0–127

प्राचार्य

आर.डी.एस. पी.जी. कॉलेज कुसांव, भाऊपुर जौनपुर

•••••

JETIR